International Journal of Hindi Research
ISSN: 2455-2232; Impact Factor: RJIF 5.22
Received: 13-11-2020; Accepted: 28-11-2020; Published: 13-12-2020
www.hindijournal.com
Volume 6; Issue 6; 2020; Page No. 151-153

उपन्यास के तत्त्व और मनोविज्ञान

अंशुमाला
पी० एच० डी० शोधार्थी (हिन्दी) ल० ना० मि० विश्वविद्यालय, कामेश्वरनगर दरभंगा बिहार, भारत

सारांश
साहित्य और मनोविज्ञान का संबंध अतिप्राचीन है। साहित्य, और मनोविज्ञान दोनों के केन्द्रीय विषय मनुष्य है। अतः इनमें परस्पर पूरक संबंध होना स्वाभाविक है। मनोविज्ञान जो कभी भारतीय मनुष्यों के बीच दर्शन का विषय हुआ करती थी आज अपने क्षेत्र–विस्तार के कारण स्वतंत्र विषय का रूप ले चुका है। आधुनिक युग में मनोविज्ञान का स्वतंत्र रूप मनोविश्लेषणबाद के रूप में काफी लोकप्रिय हो गया है। फ्रायड, एडलर, युंग द्वारा प्रतिपादित मनोविश्लेष्णवादी सिद्धान्त का हिन्दी के उपन्यास पर भी काफी प्रभाव पड़ा और उत्तरोत्तर बढ़ता ही जा रहा है। हिन्दी उपन्यास में मनोवैज्ञानिकता का प्रवेश प्रेमचंद्र के उपन्यास–साहित्य से ही हो चुका था। परन्तु उसका आधार बाह्य यथार्थ था। जैनेन्द्र के उपन्यास के साथ मनुष्य के मनोजगत का सूक्ष्म विश्लेषण किया जाने लगा। अन्तःस्तल के भावजगत को उल्लेखित करने की यह धारा सतत् पुवाह्मान है।

मूल शब्द: मनोविज्ञान, मनोविश्लेषण, मनोवैज्ञानिक उपन्यास मनोवृत्ति, अन्तः स्थल, आधुनिकतर बोध

प्रस्तावना
उपन्यास साहित्य की आधुनिक विधा है, जिसे यंत्र–युग का देन माना जाता है। पश्चिमी–जगत में जन्मे इस विधा का भारतीयकरण 19वीं सदी के उत्तराई में माना जाता है। जन्म से ही उपन्यास यथार्थ जीवन की ओर उन्मुख रहा है। किसी जाति या समाज के बढ़ते हुए विचारों और निरंतर उत्पन्न होती रहने वाली जीवन की यथार्थ परिस्थितियों से सम्पर्क स्थापित करते रहने के प्रयत्नो का अध्ययन उपन्यास है। विज्ञान के नित–नूतन आविष्कारो के परिणामस्वरूप मनुष्य के सोचने–विचारने की प्रणाली में परिवर्तन होते गये हैं। आज मनोविज्ञान का बढ़ता प्रभाव इसी विकसित जीवन–शैली का परिणाम है। उपन्यास को भी इसने काफी प्रभावित किया है। उपन्यास की विषय–क्षेत्र है–मानव–मस्तिष्क। अस्तु दोनों परस्पर अन्योन्याश्रित भाव से संबद्व हैं। उपन्यास के सभी पक्षों पर मनोविज्ञान के प्रभाव से उसके स्वरूप में परिवर्त्तन आ गया है। रेनेवेलिक और ऑस्टिन ने उपन्यास के प्रमुख तत्त्वः– कथानक, परिवेश और चरित्र–चित्रण को माना है। इनके साथ कथोपकथन, भाषा और उद्येश्य भी उपन्यास के तत्व हैं।

कथानक
मनोविज्ञान के विकास से रचनाकार इतना सामर्थ्यवान हो गया कि वह मनुष्य के कथनी और करनी के पीछे के वास्तविक कारणों को प्रकाशित कर पाये। अर्थात् मनुष्य के व्यवहार में आये परिवर्त्तनों के पीछे के कारण को जानना और उससे उपन्यास का कथानक तैयार करना ही उपन्यासकार का हेतु होता है। इस स्थिति में प्रायः कथानक गौण ही होते हैं। मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में कथानक के प्रति उदासीनता होती है।
प्रायः सामाजिक उपन्यासो में समाज के किसी भी पहलू को विषय बनाया जाता है, वह नारी समस्या हो, ग्रामीण जीवन या महानगरीय जीवन की समस्या हो, दाम्पत्य जीवन की
कथा हो या टूटते संयुक्त परिवार की कथा हो। ऐतिहासिक उपन्यासो में इतिहास की किसी घटना को विषय–वस्तु बना लिया जाता है। जैसेः– दुर्गेशनंदिनी, कपालकुंडला, आनंदमठ, झांसी की रानी। इसी तरह आँचलिक उपन्यासो में अंचल विशेष के परिवेश, समस्याओं, आदि को कथा का आधार बनाया जाता है। जैसेः– मैला आँचल, बूँद और समुद्र, कब तक पुकारूँ, जिन्दगीनामा, आदि। परन्तु मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में कथा सुसंगठित नही होती है। मनुष्य के विचार जिस तरह गतिशील होते हैं, उसी भाँति कथा–वस्तु में भी एक प्रकार की गतिशीलता होती है। यहाँ घटनायें गौण होती है। उदाहरणार्थ हम अपने घर में बैठे हैं। इसी समय देश के अलग–अलग चीज घटित हो रही हैं। बार्डर पर युद्व छिड़ गया है। दिल्ली के भीषण सर्दी में एक अनाथ सड़को पर ठिठुर रहा है। मुम्बई के लोकल ट्रेन की भीड़ में एक बच्चा अपनी माँ से बिछुर गया है। लेखक मानव–मन पर पड़ने वाले इस विभिन्न क्षणो के प्रभाव को लक्षित करता चलता है। यहाँ समय स्थिर, कथा चल रही है और ये सारी कथायें असंबद्व हैं। इन्हें आपस में मिलाने वाला है, अप्रत्यक्ष रूप में बैठा लेखक। मनुष्य के वैयक्तिक चेतना–प्रवाह को शब्द देना ही लेखक का कार्य होता है।
अर्थात् उपन्यास का कथा–भाग लम्बा–चौड़ा दीर्घकालिक होने के स्थन मानसिक प्रेरणावेग ने ले लिया। किन्तु मनुष्य के मनोविज्ञान का चित्रण इतना सरल नही है, यह जटिल है। अज्ञेय के शेखर एक जीवनी एक रात की कहानी है और यह एक रात का विजन शेखर के सम्पूर्ण जीवन की प्रस्तुति है। शेखर को सुबह फाँसी दी जायेगी और इस मृत्यु के पहले की रात में बालपन की स्मृतियों में डूबते हुए आज तक की यात्रा तय कर लेता है।
अचेतन मन की ग्रंथियों को एक–एक कर खोलने का प्रयास मनोवैज्ञानिक उपन्यासो में किया जाता है। मनुष्य की अंतर संवेदना पीड़ा, हताशा, निराशा, हर्ष, अन्माद आदि सभी मानसिक प्रवत्तियाँ उपन्यास की कथा–वस्तु बन जाती हैं। तात्पर्य है–मनुष्य की यसह अन्तर्यात्रा है। पूर्व में मानव के अन्तर्मन से बाध्य–दुनिया को देखा गया जो, आधुनिक मनोविज्ञान प्रभावित समय में उसके बाह्म क्रिया–कलापों से उसके अन्तर को जानने का प्रयास किया जा रहा है। वर्त्तमान संदर्भ में उपन्यास में कथानक मनुष्य के अवचेतन मन का यात्रा का सहायक अंग है।

चरित्र–चित्रण
मनोविज्ञान के प्रभाव ने पात्रों संरचना में आमूल–चूल परिवर्तन

किया। सर्वप्रथम ऐसे चरित्र उपन्यास के नायक बनने लगे, जो सिर्फ गुणों की भी भरमार है। मनुष्य अपनी सम्पूर्णता में पाठकों के सामने प्रस्तुत होता है। उसकी मनुष्य जनित दुर्बलतायें प्रत्यक्ष होती है। चरित्र उपन्यास की जान होती है। चरित्रों की सजीवता ही पाठक और उपन्यास की जान होती है। चरित्रों की सजीवता ही पाठक और उपन्यास के बीच तादात्म्य स्थापित करता है। ये चरित्र ही हैं जिनके माध्यम से लेखक अपने को पूरा खोल पाता है। किसी व्यक्ति के मनोजगत में विचरण करने के लिए लेखक को अपनी कल्पनाशाक्ति की प्रखरता से उस व्यक्तित्व में प्रवेश करना होता है। ऐसा करके ही उपन्यास की विश्वसनीयता बरकरार रह पाती है। ये चरित्र पूर्णतया वैयक्तिक होते हैं। मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में व्यक्ति तत्त्व की ही प्रधानता होती है।

मनोविश्लेषणवादी सिद्वांतो ने यह सिद्व किया कि मनुष्य अपने अवचेतन की निर्मिति है और वस्तुतः उसी से संचालित होता है। मनुष्य के अवचेतन में उसकी सारी भली–बुरी आदिम प्रवत्तियाँ विद्यमान होती है, जो सद् असद् की चिन्ता से परे होती है। मानव अपनी विवके–शक्ति दृढ़ इच्छा शक्ति से, सामाजिक दवाब से अपने अवचेतन की इच्छाओं को अभिव्यक्त नही कर पाता है। यही दनित इच्छा अवसर पाकर विद्रोही, असंयमित रूप में प्रकट हो ती हैं। मनुष्य की इस अंतर्विरोधी प्रवत्तियों के बीच उसके चरित्र को खोजने का काम मनोवैज्ञानिक उपन्यास में किया गया है। डॉ0 रामदरश मिश्र के शब्दो में मनोवैज्ञानिक उपन्यासों का लक्ष्य पात्रों का मनोवैज्ञानिक शोध करना है। मनुष्य वास्तव में कैसा है, इसका पता लगाना ही उन उपन्यासों का कार्य होता है। वास्तव में यथार्थ आदमी भले या बुरे नहीं होते, वे आधुनिक मनोविज्ञान की खोजों के अनुसार नदी की तरह होते हैं। कभी तेज दोड़ते हुए, कभी गहरे और अगम्य। इसी प्रकार व्यक्तियों के सम्बन्ध भी जटिल, विविध और अगम्य तथा कभी सरल, स्वच्छ और परिचित से लगते हैं।"[1]

अतः यथार्थ आदमी का चित्रण करने का अर्थ है, उसके व्यक्तित्व की सारी अन्तर्विरोधी प्रवतित्तयों, जटिल संवेदनाओं, विषम मनःस्थितियों का वैविच्य चित्रित करना। मनोविज्ञान मनुष्य के चेतन व्यक्तित्व की अपेक्षा अवचेतन व्यक्तित्व को विशेष महत्व देता है और वह अवचेतन व्यक्तित्व बड़ा ही जाटिल, उलझा हुआ, रहस्यमय और असामान्य मनोदशा और आचारों का आकलन होता है, असामान्य व्यक्ति की असामान्य अवस्था भी चित्रित होती है।

इस तरह मनोवैज्ञानिक उपन्यासों के चरित्र क्षणों में आबद्व होते हैं। एक क्षण के अंतराल में अच्छे बनते हैं, बुरे बनते हैं। ऊँचाई पर जाते हैं, तो निम्नता पर पहुँच जाते है। मनोवैज्ञानिक उपन्यासो में अनुभूति की प्रधानता होतीहै। पात्रों की संख्या सीमित होती हैं। मुश्किल से तीन चार पात्र होते हैं। वह जैनेन्द्र की सुनीता, त्यागपत्र, कल्याणी हो अज्ञेय का नदी के द्वीप हो, इलाचन्द्र जोशी के सन्यासी, प्रेत और छाया आदि उपन्यास हों सभी में पात्रों की संख्या अल्प है।

परिवेश (देशकाल)

उपन्यास–साहित्य में जब मनोविज्ञान का प्रवेश हुआ तो परिवेश हुआ तो परिवेश के स्वरूप में परिवर्त्तन हेा गया है। अब परिवेश का स्थान परिस्थितियों ने ले लिया है। ये परिस्थितियाँ दैनंदिनी भी है और पारिवारिक, समाजिक राष्ट्रीय अंतर्राष्ट्रीय सभी से प्रभावित भी है। लेखक अपने पात्र को विभिन्न परिस्थितियों में रखकर उसके चरित्र का विकास करता है। ऐसा करने पर ही उपन्यास में स्वाभाविकता आती है। पात्र और परिस्थिति के द्वन्द्व, संघर्ष से ही कथा का विकास होता है। परिवेश का सम्बन्ध कथानक और पात्र दोनों से संबंद्व है। दोनों के विकास में इसकी अहम् भूमिका है।

परिवेश में स्थान और काल का विशेष महत्व होता है। मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में स्थान विशेष का सम्बन्ध पात्रों के बाह्य संरचना यथा वेश–भूषा, रहन–सहन, खान–पान, भाषा तक सीमित है। काल का महत्त्व विशेष है। प्रेमचन्द के समय जो स्वतंत्रता पूर्व देश का वातावरण या उनके पात्र उसमें रचे–बसे, ढ़ले थे। आज के युग संदर्भ में विशेषतः मनोवैज्ञानिक उपन्यास के संदर्भ में वातावरण की जटिलता मनुष्य के रहस्यों को खालने में एक अलग तरह की भूमिका अदा करता है। मनुष्य का शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक कुल मिलाकर उसका सर्वागीण विकास वातावरण पर आधारित है। परिवार में माता–पिता, भाई–बहन, दादा–दादी आदि के संबंधों का असर उनमें पलने–बढ़ने वाले बच्चों पर पड़ता है। अज्ञेय का शेखर हो या मन्नू भंडारी का बंटी, जैनेन्द्र की मृणाल हो या इलाचंद्र जोशी का पारसनाथ आदि से सभी पात्रों को चरित्र–निर्माण में उनके पारिवारिक वातावरण का अहम् योगदान है। व्यक्तिगत सम्बन्ध वातावरण से प्रभावित हुए बिना रह ही नही सकते।

काल का महत्त्व इस संदर्भ में भी अधिक उपयोगी हो जाता है कि जब हमें स्वतंत्रतापूर्व के हिन्दुस्तान को देखना होगा तो हम उन्हें प्रेमचन्द के उपन्यासों में देख सकते हैं। लेकिन एक ही काल में भिन्न–भिन्न रचनाकार काल को अलग–अलग ढ़ंग से भी व्यक्त करते हैं। जैसेः–अज्ञेय, नागार्जुन, यशपाल और रेणु एक ही दौर के सक्रिय उपन्यासकार रहे हैं, लेकिन इनकी कृतियाँ एक–दूसरे से काफी भिन्न है।

आज के मनोवैज्ञानिक युग में उपन्यास के तत्त्वों में कथानक, उद्येश्य आदि गौण पक्ष हो गये हैं। परिवेश और पात्र प्रधान तत्व हैं। परिवेश व्यक्ति के मनोजगत को जानने में, उसे अभिव्यक्ति देने में काफी सहायता प्रदान करता है। किसी मनुष्य के अन्तर्मन में प्रवेश करना, उसे उसी की तरह पहचानना बहुत ही जटिल एवं कठिन कार्य है। इस कठिन कार्य की जटिलता को सुलझाने में, परिवेश एक आवश्यक तथ्य है।

कथेपकथन

प्रेमचन्द के पूर्ववर्ती उपन्यासों में कथोपकथन बहुत अल्प मात्रा मं रहता था। ये उपन्यास अपने लम्बे–चौड़े घटनाओं की श्रृंखला में इस तरह आबद्व होते थे कि कथोपकथन का कही अवसर ही नही बचता था। आज स्थिति इसके ठीक विपरीत है। अब तो ऐसे उपन्यास लिखे जा रहे हैं, जो आद्योपान्त कथोपकथन से घिरे होते हैं। पात्र के मनोविज्ञान को मुखरित करने के लिए कथोपकथन एक आवश्यक तत्व है। पात्रों के मुख से जितनी बातें कही जाती हैं, उनके अन्तर्मन का परत खुलता जाता है और पाठक उसके समीप पहुँच पाता है। प्रेमचन्द के गोदान के अंतिम दृश्य में हम कथोपकथन की सजीवता का उदाहरण देख सकते हैंः–

दातादीन कहता है'– "हाथ फुरती से चलाओ होरी। इस तरह से तुम दिन भर में भी न काट सकोगे। होरी आहट अभिमान से कहता है– चला ही तो रही हूँ महाराज। बैठा तो नही हूँ।"[2]

इस पर दातादीन उसे और जली–कटी बातें सुनाते हैं। तीन दिनों का भूखा होरी विष का घूँट पीकर जोर से हाथ चलाना शुरू करता है। हाथ से गंड़ासा छूट गया और वह जमीन पर औंधे मुँह गिर गया। प्रेमचंद कहते हैं "होरी उन्मत की भाँति सिर से ऊपर गंड़ासा उठाकर ऊख के टुकड़ो का ढ़ेर करता जा रहा था। उसके भीतर जैसे आग लगी हुई थी। उसमें अलौकिक शक्ति आ गई थी। उसमें जो पीढ़ियों का संचित पानी था। वह इस समय जैसे भाप बनकर उसे मन्त्र की सी शक्ति प्रदान कर रहा था। उसकी आँखों के आगे अंधेरा छाने लगा, सिर में फिरकी सी चलने लगी, फिर भी उसके हाथ यन्त्र की गति से बिना थके बिना रूके उठ रहे थे। उसकी देह से पसीने की धार निकाल रही थी, मुँह से फिचुककर छूट रहा था और सिर धम–धम सा शब्द हो रहा था। पर उस पर जैसे कोई भूत सवार हो गया

था।"[3] डा0 देवराज उपाध्याय कहते हैं– "यह होरी की आज्ञा–पालकता की विद्रुपमयी अति है।"[4]
होरी के अन्त का यह सजीव चित्रण मनोविज्ञान के अधार पर ही सफल हो सका है।

भाषा

उपन्यास एक कथात्मक विधा है। कहानी कहना और सुनाना भाषा की रोचकता के बिना संभव नहीं है। उपन्यास में जीवन का विस्तृत एवं सूक्ष्म चित्रण होता है। यह चित्रण भाषा के द्वारा सजीव होता है। भाषा में रचनात्मक क्षमता होती है। आधुनिक उपन्यास में इसकी उपादेयता इस अर्थ में भी महत्वप्रद है। आज हम उपन्यास का जो स्वरूप देखते हैं उसमें हम उसे पढ़ नही रहे होते हैं वरन् उस कथा को देख रहे होते हैं, उसके साथ जी रहे होते हैं। इस दृश्यात्मकता में, भावानुभूति में भाषा की भूमिका अहम् है। अज्ञेय के शेखर एक जीवनी की भाषाः– "मैं अपने पहले बीते हुए असंख्य युगों का निचोड़" हूँ। एक निर्जीव धूमकेतु इसे इस पृथ्वी के जन्म की, उस पर अत्यंत प्राथमिक जीवन के उद्भव की, और उससे उत्पन्न अनेक विभिन्न जातियों के उद्भिज, अंडज, स्वेदज और पिंडज जीव–जन्तुओं की वसीयत की छाप मुझ पर हैं, पिछले करोड़ों वर्षों से निरन्तर अन्नत होती हुई न जाति के उच्चतम आदर्शों का केन्द्रीभत पूँज भी मैं ही हूँ। इस दृष्टि से, मैं जो कुछ हूँ, अपना कुछ नही हूँ, नया कुछ नही हूँ। मैं किसी अत्यंत प्राचीन ग्रंथ का एक नया संशोधित, सवंर्धित ओर सटीक–सटिप्पण संस्करण हूँ, जिसके मूल लेखक को पता नही।
और मैं नया अपूर्व हूँ। मेरे जीवन का एक क्षण भी पहले कभी नही हुआ। मैं एक नई वस्तु हूँ, एक नई प्रतिज्ञा हूँ, जिसे भविष्य पूरा करेगा, एक शिक्षा हूँ जो भविष्य के लिए रह जायेगी।
शेखरः एक जीवनी की यह भाषा यह जाहिर करती है कि शेखर एक उच्च शिक्षा प्राप्त, मध्यवर्गीय, विचारवान युवक है।
उपन्यास जिस प्रकासर का होता है, उसे उसके पात्र, परिवेश, मनःस्थिति के अनुरूप भाषा के प्रयोग से रचना में सहजता आती है। प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासो में बोल–चाल की भाषा का बखूबी इस्तेमाल किया है। आज की रोजमर्रा की जिन्दगी में प्रयोग होने वाली भाषा का इस्तेमाल तद्भव, देशज और बोल–चाल में प्रचलित दूसरी भाषाओ के शब्दो का प्रयोग आवश्यकतानुसार मुहावरे, लोकोक्ति, यहाँ तक कि लो–जीवन में प्रचलित गालियों का प्रयोग (द्रष्टव्यः आया गाँव, मुरदा घर) रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों का प्रयोग इन सबसे उपन्यास की भाषा अधिक रचनात्मक और सम्प्रेषणीय बन जाती है। अज्ञेय के नदी के **द्वीप** में काव्य–भाषा का भी प्रयोग किया गया है। ऐसे प्रयोग से भुवन के बाह्म परिस्थितियों के साथ उसके अन्तर्मन की स्थिति का भावपूर्ण चित्रण मिलता है। उपन्यास की काव्य–भाषा में बिम्ब का प्रयोग उसकी काव्यात्मक गुणों को बढ़ा देता है।

उद्देश्य

साहित्य सोद्देश्य ही होता है। बिना उद्देश्य कोई रचना साहित्य की श्रेणी में नही रखी जा सकती है। प्रेमचंद साहित्य के उद्देश्य में कहते हैं "पुरानी कथाओं में लेखक का उद्देश्य घटना–वैचित्रय दिखाना होता था; सम्प्रतिकालीन उपन्यासों में लेखक का उद्देश्य मनोभावों और चरित्र के रहस्यों को खोलना होता है; अतएव यह आवश्यक है िकवह अपने चरित्रों को सूक्ष्म–दृष्टि से देखे, उसके चरित्रों का कोई भाग उसकी विगााह से न बचने पाये। "प्रेमचन्द ने आगे यह भी कहा है कि "हर्ष और शोक प्रेम और अनुराग, ईर्ष्या और द्वेष मनुष्य–मात्र में व्यापक है। हमें केवल ह्रदय के उन तारों पर चोट लगानी चाहिए जिनकी झंकार से पाठकों के ह्रदय पर वैसा ही प्रभाव हो। सफल उपन्यासकार का सबसे बड़ा लक्षण है कि वह अपने पाठकों के ह्रदय में उन्ही भावों को जागृत कर दे जो उसके पात्रों में हो। पाठक भूल जाय कि वह कोई उपन्यास पढ़ रहा है– उसके और पात्रों के बीच में आत्मीयता का भाव उत्पन्न हो जाय।"
आज के मनोवैज्ञानिक उपन्यास जिसका सूत्रपात प्रेमचंद ने कर दिया अपने आधुनिकतम रूप में प्रेमचन्द के उद्देश्य सम्बन्धी विचारधारा से किसी–न–किसी रूप में आज भी प्रभावित हो रहे हैं। मनोविज्ञान के फैलते प्रभाव के परिणामस्वरूप हिन्दी कथा–साहित्य में ऐसे उपन्यासों की रचना बहुत अल्प है, जिनका आधार मनोविश्लेषणवादी सिद्वान्त पद्वति गुंफित हैं। जीवन–सत्य का उद्घाटन करना, उसका बोध कराना उपन्यासकार का लक्ष्य होता है। अपने लक्ष्य की पूर्त्ति में ये सारे प्रक्रम सहायक सिद्व होते हैं।
मनोवैज्ञानिक उपन्यास में उपन्यासकार उपदेशक, समाज–सुधारक या व्याख्यता की भूमिका में नही होता है वरन् वह मानव–मन का विश्लेषण करता है। मनुष्य के अवचेतन में छिपे भावों को अभिव्यक्ति देने का कार्य करता है। उसका उद्देश्य होता है, जो शाश्वत सत्य है, स्थायी मानवमूल्य या जीवन–मूल्य है, उसे भक्ति के केन्द्र में विश्लेषित करना। इस विश्लेषण में लेखक मानव–मन हर कपाट को खोलने का प्रयास करता है; ऐसा करते हुए वह स्वयं को खोल देता है। क्योंकि अपने पात्रों के अंतर्मन में प्रवेश करने के लिए यह आवश्यक है। लेखक का यह उद्देश्य होता है कि पाठक जब उपन्यास पढ़े तो उसे ऐसा प्रतीत हो कि हम किसी जीवन की कथा नही सुन रहे हैं; वरन् हम वास्तविकता में उसे जी रहे हैं।

निष्कर्षत

उपन्यास के तत्त्व और मनोविज्ञान की जब हम चर्चा करते हैं तो हम पाते हैं कि मनोविज्ञान के प्रवेश ने इसे सूक्ष्म–से–सूक्ष्म स्तर पर प्रभावित किया है। उपन्यास में मनोवैज्ञानिकता का अंश जितना अधिक होता है, कथावस्तु उतना ही गौण हो जाते हैं, चरित्र–चित्रण प्रधान होजाते है; पात्रों की संख्या अल्प होती है, प्रायः सभी पात्र अंतर्मुखी होते है; परिवेश की प्रधानता हो जाती है; कथोपकथन चरित्रों को खोलने का महत्वपूर्ण साधन बन जाते है; ये वार्तालाप कभी एक–दूसरे पात्रों के बीच, कभी स्वागत योग्य होते है, दोनों का अपना विशेष महत्व होता है। भाषा प्रतीकात्मक, प्रभावोत्मादक होते हैं एवं उद्देश्य का स्वरूप स्थूल के स्थान पर सूक्ष्म हो जाता है।

सन्दर्भ सूची

1. हिन्दी उपन्यास एक अन्तर्यात्रा डा0 रामदरश मिश्र : राजकमल प्रकाशन संस्करण– पृ0–72, 1968 ई0, नई दिल्ली।
2. गोदान– प 0–319 : भारतीय ज्ञानपीठ, तीसरा संस्करण–2016 ई0.
3. आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य : डॉ0 देवराज : साहित्य–भवन प्रकाशन और मनोविज्ञान– पृ0–178 द्वितीय संस्करण, 1963 ई0.
4. साहित्य का उद्देश्य : प्रेमचंद : हंस प्रकाशन, पृ0–75, इलाहाबाद नवीन संस्करण–1938 ई0.